यहाँ नहीं लेना है। इसलिये '**बन्ध का कारण वह ही मोक्ष का घातक है-ऐसा श्रद्धान करना।**'

'**इसप्रकार शुद्धोपयोग को ही उपादेय मानकर उसका उपाय करना,...**' लो, एक शुद्धोपयोग को ही उपादेय जानकर उसका उपाय करना। '**और शुभोपयोग-अशुभोपयोग को हेय जानकर उनके त्याग का उपाय करना।**' दोनों। शुद्धोपयोग का आदर करना, अंगीकार करना और शुभ-अशुभ दोनों को हेय करना। चौथे, पाँचवे, छठवें। किसको यह हेय है? चौथे गुणस्थान से शुभोपयोग हेय? सात बोल आये न तुम्हारे? अरे..! चौथे से हेय। अरे..! पहले राग हेय माने बिना सम्यग्दर्शन तरफ दृष्टि होगी नहीं। राग का लक्ष्य छोड़े बिना, लक्ष्य छोड़ो कि हेय कहो, स्वभाव पर दृष्टि होगी नहीं। कहो, कितनी बात करते हैं, तो वह मान्य नहीं। टोडरमल नहीं, टोडरमल नहीं, आर्षवाक्य लाओ। यह आर्षवाक्य क्या कहता है? बन्ध का कारण है, पुण्य बन्ध का कारण है। मुनि का शुभभाव चारित्र में होता है, वह महाव्रत का ज़हर है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं।

मुमुक्षु :-- गोम्मटसार में यही है।

उत्तर :-- गोम्मटसार में भी यही है। तत्त्व तो एक ही बात है। मोहजोग संभवा, गुणस्थान है न? मोहजोग संभवा। व्याख्या है, मूल पाठ में है, गोम्मटसार में।

'**शुभोपयोग-अशुभपोयगो को हेय जानकर उनके त्याग का उपाय करना।**' अब थोड़ी दूसरी एक बात करेंगे...

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर सं.-२४८८, चैत्र सुद-८, गुरुवार, दि. १२-४-१९६२,
सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. १५

... पराश्रित व्यवहार सब छुड़ाया है ऐसा मैं मानता हूँ। समझ में आया? परद्रव्य के आश्रय से जितने विकल्प हो, भेद पड़े वह सब भगवान ने छुड़ाया है। ..भाई! बड़ी गड़बड़ी करते हैं। विपरीत श्रद्धा रखे, त्यागी नाम धारे वह भी मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। ..भाई! आहाहा..! लोगों को बाह्य त्याग और बाह्य क्रियाकांड का

इतना पोषण और मीठास है कि उसमें सत्य की श्रद्धा कितनी लूटती है उसकी उसको खबर नहीं है।

कहते हैं, भगवान अमृतचंद्राचार्य मुनि, कुन्दकुन्दाचार्य के पुस्तकों के टीकाकार, महा भावलिंगी संत थे। धर्मधुरंधर, धर्म के स्तंभ दिगंबर मुनि थे, भावलिंगी संत थे। वे कहते हैं कि भगवान ने जब पर तरफ की हिंसा, झूठ, चोरी, असत्य का भाव छुड़ाया है तो मैं मानता हूँ कि आत्मा के सिवा जितना परद्रव्य के आश्रय से भाव हो उन सब व्यवहार को भगवान ने छुड़ाया है। कहो, बराबर है? क्या है? शुकनचंदजी! व्यवहार छुड़ाया है। छोड़ देना न?

मुमुक्षु :-- व्यवहार आता तो है।

उत्तर :-- वह ही कहते हैं, आता है, लेकिन दृष्टि में हेय उसको समझना। क्या कहते हैं देखो। आवे उसको ना कहे न, नहीं आवे उसको कौन ना कहे? जो मनुष्य नहीं आया उसको कहे कि यहाँ मत आना? भाव अन्दर व्यवहार आवे तो सही, दया, अहिंसा, सत्य, दत्त भाव होता तो है, परन्तु हेय है। श्रद्धा में आदरणीय नहीं है। श्रद्धा में आदरणीय माने तो मिथ्यादृष्टि हो जाये। समझ में आया?

इसलिये पराश्रित व्यवहार है वह समस्त छुड़ाया है। भाषा यह है, समस्त छुड़ाया है। व्यवहार का कोई भी कण पराश्रित हो, उसको भगवान ने आदरणीय नहीं कहा है। यह गोटा है न, वह कहते हैं, व्यवहार धर्म का कारण है, व्यवहार से धर्म होता है, व्यवहार करते-करते होता है, व्यवहार साधन और निश्चय साध्य। अरे..! व्यवहार साधन तो व्यवहारनय से कहा है। व्यवहारनय से व्यवहार साधन कहा है, वह हेय है, आदरणीय नहीं है। ... निश्चय क्या उसकी भी व्याख्या बाद में करेंगे। समझ में आया?

एक निश्चय को ही भले प्रकार से निश्चयपने अंगीकार करके, निश्चय को... समझ में आया? है न? 'सम्यक् निश्चय एकमेव सद्दहिं निष्कम्प...' निश्चय को भले प्रकार से। भले प्रकार से, कहने का आशय क्या है? सिर्फ कथनशैली में उसकी बात न रहे। उसका खुलासा करेंगे, निश्चय यानी क्या? नीचे कहते हैं, देखो! ज्ञानघन कहेंगे, शुद्ध ज्ञानघन, शुद्ध ज्ञानघन। जिस ज्ञायकभाव को छठवीं गाथा में शुद्ध कहा है। फिर उसके साथ मिलाया, कल दूसरा अर्थ हो गया था न, स्वभाव से अभिन्न। फिर रात्रि को कहा, ऐसा है। हाँ, बात सच्ची है, बात तो हुई थी। लेकिन फिर ज्ञायक के साथ मिलान किया, छठवीं गाथा के साथ, शुद्ध तो ज्ञायकभाव को ही कहते हैं। छठवीं गाथा में प्रश्न पूछा है न? शुद्ध किसे कहना कि जिसका हम सेवन करे? शिष्य ने प्रश्न किया कि आप शुद्ध किसको कहते हो कि जिसका हमें सेवन करना?

'**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।**' ज्ञायक जो भाव '**एवं भणंति सुद्धं**' जाणकस्वभाव ज्ञायक त्रिकाल भाव उसको हम शुद्ध कहते हैं। उस शुद्ध का फिर यह अर्थ किया है। समझ में आया?

कहते हैं, एक निश्चय को ही भले प्रकार से निश्चयतया। दो शब्द निकाले, एकमेव में से? दो निश्चय कहाँ-से निकाला? '**सम्यङ्निश्चयमेकमेव**' एक को ही, ऐसा समझकर निश्चय निकाला है? निष्कम्प, ऐसा न? ठीक, निष्कम्प का अर्थ ... समझ में आया? निश्चल चाहिये। उसमें लिखा है? लो, इतना सुधारना पड़ेगा। मुझे लगा, दो निश्चय क्यों आये? उसमें ऐसा कहा न, '**सम्यङ्निश्चयमेकमेव**', एकम् को दूसरा निश्चय कहा? इसमें तो ऐसा है कि, '**निष्कम्पम् आक्रम्य**'। निश्चलपने ऐसा होना चाहिये, निश्चलपने चाहिये। लो, नये प्रकाशन में यह सुधारना, ए.. देवानुप्रिया! नवनीतभाई की ओर से यह सब छप रहा है न, उसमें डालना। क्या कहा समझ में आया?

बड़ी अच्छी गाथा आयी है यह, मक्खन है मक्खन! समझ में आया यह? अरे..! धर्मी जीव, कहते हैं कि अरे..! अभिलाषी, सत्यकामी! भगवान ने व्यवहार.. जितनी परवस्तु हैं, भले देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पूजा का भाव श्रद्धामें से तो छुड़ाया है। समझ में आया? समझ में आता है? छुड़ाया तो अब कहाँ जाना? एक को छोड़कर जाना कहाँ? कोई शरण है? हाँ, एक निश्चय को सम्यक् प्रकार से '**निश्चलतया अंगीकार करके...**' इतना सुधरा अब की बार। देखो न। धीरे-धीरे.. शब्द का अर्थ बराबर न हो तो... निश्चलतया--अब, यह निश्चय क्या, उसका खुलासा करते हैं '**शुद्धज्ञानघनस्वरूप...**' यह निश्चय। समझे? जो ज्ञायकभाव छठवीं गाथा में कहा था, एक ज्ञायकभाव, ज्ञायकभाव चैतन्यस्वभाव एकरूप भाव, अभिन्न भाव, आत्मा के साथ ज्ञायकभाव का अभिन्न भाव, ऐसा एक आत्मा शुद्धज्ञानघन, उसका आश्रय करके निश्चलतया अंगीकार करके '**निज महिमा में (--आत्मस्वरूप में) स्थिरता क्यों धारण नहीं करते?**' इसमें और भी न्याय डाला है। व्यवहार की महिमा क्यों करते हैं? और निश्चय की महिमा क्यों नहीं करते हैं? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पोपटभाई!

ये तकरार करते हैं न? केशवलालभाई! सोनगढ़वाले, व्यवहार आदरणीय नहीं है, व्यवहार में धर्म नहीं है (ऐसा कहते हैं)। लेकिन ये क्या कहते हैं? सुवर्ण को ज़ंग नहीं लगता। सुवर्ण को ज़ंग लगे? ऐसे सोनगढ़ में भाव को ज़ंग नहीं लगता, ऐसा कहते हैं मूल में तो। सत्य बात को ज़ंग लग सकता नहीं। त्रिकाल ज्ञायकभाव शुद्ध चैतन्यमूर्ति ज्ञान शुद्ध, ऐसे निश्चय को, ऐसी वस्तु को अंगीकार करके निष्कम्पपने, निश्चलपने उसमें चलायमान न हो उस तरह अंगीकार करके, और निज महिमा में, वह स्वरूप पूर्णानंद अभेद अखंड है उसकी महिमा में स्थिति--टिकना क्यों नहीं करते?

दूसरी रीति से कहें तो व्यवहार छुड़ाया है उसकी महिमा क्यों नहीं छोड़ते? भाई! नवनीतभाई! देखो, यह मोक्षमार्गप्रकाशक। है कि नहीं? धरमचंदजी! क्या कहते हैं? तकरार, तकरार लोग करते हैं।

मुमुक्षु :-- जानते नहीं तो..

उत्तर :-- पहले दृष्टिमें से छोड़ना, श्रद्धामें से पहले छोड़ना। बाद में स्वरूप की स्थिरता होगी तो सब छूट जायेगा। पहले श्रद्धामें से हर समय छूटना, छूटना, छूटना अर्थात् उसका आश्रय करना नहीं और निश्चय का आश्रय करना। बाद में स्वरूप की स्थिरता होगी तो व्यवहार सहज छूट जायेगा, सहज छूट जायेगा। परन्तु पहले श्रद्धा में ही छूटने का अभिप्राय नहीं और लाभदायक है, लाभदायक है, करते-करते निश्चय होगा, व्यवहारसाधन करते-करते (होगा), व्यवहार तो करते हैं, तो निश्चय का कुछ लाभ होगा। शून्य का लाभ होगा, चार गति में रुलने का। समझ में आया?

कहते हैं, अरे..! सत्पुरुषो! पुनः बात क्या की है? सन्त शब्द पड़ा है न? सन्त। भाई! सन्त का अर्थ सम्यग्दृष्टि, सत्पुरुष, सन्तः। सन्तो! सन्त यानी समकिती, हे धर्मीजीव! व्यवहार का दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा का जितना भाव हो वह सब धर्म नहीं है, इसप्रकार श्रद्धा में छोड़ने लायक है। वाँचन नहीं करते हैं और समझते नहीं है और (चिल्लाते हैं), वहाँ त्यागी को मानते नहीं, फलाने को मानते नहीं। अरे.. भगवान! काहे के त्यागी? धर्म के त्यागी को माने कि अधर्म के त्यागी को माने? शुभभाव को अंगीकार करना (ऐसा माननेवाला) तो धर्म का त्यागी है। नवनीतभाई! आहाहा..!

कहते हैं, देखो! यह श्लोक है, यह वस्तु। बहिन! है कि नहीं मोक्षमार्ग प्रकाशक? नवनीतभाई की घरवाली से कहता हूँ। है साथ में? लो तो सही, पढ़ो तो सही। यहाँ यह कहीं घर का नहीं कहते हैं। नवनीतभाई! यहाँ घर का कुछ नहीं कहते हैं। कोई ऐसा कहे कि ये घर का कहते होंगे। इसमें देखो, लिखा है उस अनुसार बात तो घर की है। लेकिन यहाँ लिखा है उस अनुसार उसका भाव चलता है। कहो, समझ में आया? कहो, समझ में आया? कितनी बात कही है एक श्लोक में!

'**शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नन्ति सन्तो घृतिम्**'। अरे.. धीर पुरुषो! स्थिति कर। घृति का अर्थ स्थिति कर। अरे..! धर्मात्मा सत्पुरुष! व्यवहार की जितनी लेखनी शास्त्र में आवे जैन में, जैन की आज्ञा का व्यवहार, हाँ! द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, कथानुयोग में व्यवहार की आज्ञा के आये, वह सब व्यवहार के भाव सत्पुरुषों को श्रद्धा में छोड़ने जैसा है। ये लिखा, सब ऐसा कहते हैं, ये लिखा शास्त्र में। लिखा है उसकी तो बात चलती है। व्यवहारनय से जितनी भी लेखनी शास्त्र में परद्रव्याश्रित की आये

कि पर जीव की दया पालनी, देव-गुरु की भक्ति करनी, वह सब परद्रव्याश्रित भाव है। उस भाव को, शास्त्र में व्यवहार-आज्ञा का कथन आये, वह अभूतार्थदृष्टि से कथन है। वास्तविकपने वह आदरणीय धर्मी जीव को होता नहीं। तकरार करे कि, यह आज्ञा मान्य है कि नहीं? लेकिन वह आज्ञा व्यवहार की है इसलिये मान्य है कि वह है, लेकिन आदरणीय नहीं है। समझ में आया?

अरे..! '**निश्चयही को भले प्रकार निष्कम्परूप से अंगीकार करके शुद्धज्ञानघनरूप निजमहिमा में स्थिति क्यों नहीं करते?**' इसमें वह आता है, निश्चल को निश्चलपने... कलशटीका में। मैं तो कलशटीका का कहता हूँ, इसमें तो तुम्हारे जैसा होगा न। मूल अनुसार होगा न, हिंमतभाई ने किया है न। निश्चय को ही निष्कम्पने अंगीकार करके, देखो! समझ में आया? महा दो सिद्धांत जैन दर्शन के। जैन परमेश्वर ने परद्रव्याश्रित कथन, दया उठे, दान, भक्ति, पूजा, व्रतादि का भाव वह सब परद्रव्य के लक्ष्य से उत्पन्न हुए भाव, पराश्रय से हुए भाव, उसकी व्यवहार से शास्त्र में कथंचित् आज्ञा की हो, फिर भी उस आज्ञा को, उसका फल संसार बन्ध है, इसलिये वह छोड़ने योग्य है। ऐसी श्रद्धा दृढ़ करनी। उस श्रद्धा में फेरफार करेगा तो उसकी कभी मुक्ति होगी नहीं।

'**शुद्धज्ञानघनरूप निजमहिमा में...**' निजमहिमा देखो! वह पराश्रित है। पराश्रित भाव है उसकी महिमा छोड़। उसकी महिमा और माहात्म्य आता हो कि आहाहा..! व्यवहार से माहात्म्य हो, भक्ति भगवान की, पूजा, दानादि व्रत के भाव में व्यवहार से माहात्म्य कहने में आये, निश्चय से वास्तविक माहात्म्य नहीं है। निजमहिमा में स्थिति, पर की महिमा छोड़ी और अपनी महिमा में शुद्धज्ञानस्वरूप को अंगीकार करके उसमें स्थिति क्यों नहीं करते? क्योंकि उसके आश्रय से ही आत्मा का मोक्षमार्ग है, अन्य के आश्रय से मोक्षमार्ग है नहीं। नेमचंदभाई!

'**भावार्थ :-- यहाँ व्यवहार का तो त्याग कराया है,...**' ठीक! व्यवहार का तो त्याग कराया है। भगवान ने कहा, व्यवहार का त्याग कराया है। अमृतचंद्राचार्य कहते हैं, हम कहते हैं और भगवान कहते हैं कि त्यागने योग्य है। होता है सही, हाँ! श्रावक को होता है, मुनि को होता है, भावलिंगी संत को होता है, व्यवहार होता है सही, परन्तु श्रद्धा में आदरने लायक और उससे धर्म होता है ऐसा मानने लायक नहीं है। क्या हो? '**यहाँ व्यवहार का तो त्याग कराया है, इसलिये निश्चय को अंगीकार करके...**' देखो! निश्चय अर्थात् यह शुद्धज्ञानघन। '**निजमहिमारूप प्रवर्तना युक्त है।**' शुद्धज्ञानघन यानी ज्ञायकभाव, ज्ञायकभाव ऐसा आत्मा। वह तो वही अर्थ हुआ। समझ में आया?

'**निश्चय को अंगीकार करके निजमहिमारूप प्रवर्तना युक्त है।**' देखो! अपनी महिमा ज्ञानानंद चिदानंद शुद्ध परमात्मस्वभाव, उसकी महिमा में महिमारूप प्रवर्तना युक्त है। लो, बराबर है? वह, अमृतचंद्राचार्य का आधार देकर बात को (सिद्ध की है)। व्यवहार छोड़ने योग्य है, निश्चय अंगीकार करने योग्य है। दोनों नयों में दोनों आदरणीय है ऐसा है नहीं। भगवान ने दो नय कही है, तो दोनों नय अंगीकार करनी चाहिये। दो नयों में विरोध है। दो नयों में विरोध है, विरोध दोनों प्रकार से अंगीकार कर सके ऐसा बनता नहीं। समझ में आया?

अब, टोडरमलजी भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का दृष्टान्त देते हैं कि देखो भाई! अमृतचंद्राचार्यमें से तो निकाला परन्तु कुन्दकुन्दाचार्य महाराज भी व्यवहार को हेय बताते हैं। मोक्षपाहुड़ की ३१वीं गाथा है। वह आती है, मोक्षपाहुड़ की ३१वीं गाथा।

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणे कज्जे।।३१।। (मोक्षपाहुड़)

ये सब मक्खन गाथाएँ हैं। नवनीतभाई! मौके पर यह गाथा बराबर ऐसी आ गयी है। यहाँ मानस्तंभ का महोत्सव है और यहाँ मान का त्याग करने की बात है। अभिमान छोड़, व्यवहार का अभिमान छोड़ एक बार, छोड़। कहते हैं, महिमा छोड़। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य मोक्षपाहुड़.. मोक्ष है न? वहाँ व्यवहार से मोक्ष होता नहीं है इसलिये यह गाथा उसमें आयी है, भाई! कुन्दकुन्दाचार्य महाराज, अष्टपाहुड़ है उसमें ३१वीं गाथा में मोक्षसार तो व्यवहार से मोक्ष होता नहीं। भगवान की आज्ञावाला जो व्यवहार उससे भी मोक्ष होता नहीं। ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य मोक्षपाहुड़ की ३१वीं गाथा में फरमाते हैं। टोडरमलजी उसकी बात का दृष्टान्त देकर बात को--सत्य को सिद्ध करते हैं।

'**अर्थ :-- जो व्यवहार में सोता है...**' अर्थात् व्यवहार के कार्य छोड़कर वह निज कार्य में जागते हैं, व्यवहार की सावधानी छोड़कर निश्चय की सावधानी करता है, वह व्यवहार में सोये हैं और निश्चय में जागते हैं। समझ में आया? व्यवहार में सोये हैं अर्थात् जितनी व्यवहार की आज्ञा वीतराग की (है), दया, दान, व्रत, तप, जप, भक्ति, पूजा... भीखाभाई! जैसा राग आये उसमें वे सोते हैं, यानी कि उसकी सावधानी छोड़ देते हैं। उसका आश्रय छोड़ देते हैं और '**अपने कार्य में जागता है।**' दो बात कही। व्यवहार में जागे वह निज कार्य नहीं कर सकता, ऐसा सिद्ध किया। समझ में आया?

व्यवहार चौथे गुणस्थान योग्य राग आये, पाँचवें योग्य राग भक्ति आदि हो, छठवें योग्य पंच महाव्रत आदि हो, लेकिन उस कार्य में जो जागा है, वह निज कार्य में सो गया है। और उस कार्य में सावधानी छोड़ी है, वह अपने कार्य में जागता है।

उसका अर्थ यह है कि व्यवहार में अपना कार्य सिद्ध होता नहीं। ऐसा हुआ न उसका अर्थ? आहा..! ऐसी स्पष्ट बात है। उसे उसके ज्ञान में इस बात को बराबर सम्मत करनी चाहिये। सम्मत करके, इस बात के अलावा दूसरी बात जैनदर्शन में तीन काल में हो सकती नहीं। यह तो जहाँ-तहाँ वह पाले, यह क्रिया की, यह किया, वह किया, उतना तो पालता है, वह तो अच्छा है। अरे..! श्रद्धा में बड़ा गड्ढ़ा है। मिथ्यात्व का श्रद्धा का गड्ढा है, वहाँ मक्खी के टाँग जैसी क्रिया तौलने में आती नहीं। समझ में आया? केशवलालभाई! व्यवहार में सोया है... क्योंकि मोक्षपाहुड़ अधिकार है न? व्यवहार का परिणाम आवे, उसमें से हटकर स्थिर होते हैं, स्वरूप में स्थिर होते हैं उसका कार्य होता है। व्यवहार में रहे उसका स्वकार्य होता नहीं। आये फिर भी उसमें स्वकार्य होता नहीं। अच्छी बात है, भाई!

'**अपने कार्य में...**' 'योगी' शब्द है न? ... '**सो जोई**'। जोई यानी जुड़ान करना। व्यवहार में जिसका जुड़ान छूटा है, उसका निश्चय में स्वकार्य में जागृत स्व में जुड़ान किया है। दृष्टि और स्थिरता, ज्ञायकमूर्ति भगवान आत्मा.. बस! वह शुद्ध, उसका आश्रय लेकर उसमें श्रद्धा (कर) और स्थिर हो, यह एक भगवान की आज्ञा है। अनुभूति करने की भगवान की आज्ञा है। आहाहा..! कहो, छोटाभाई! ये बराबर है? ये सब विरोध करते हैं न? करने दो? वह उसमें करे, उसमें, उसके घर में। सत्य में कुछ चलता नहीं। देखो! एक तो लिया। '**जो व्यवहार में सोता है...**' अर्थात् व्यवहार से हट गये हैं। '**वह योगी...**' अर्थात् स्वरूप में योग करनेवाला '**अपने कार्य में जागता है।**' ऐसा शब्द उसमें भी आता है न? वह आता है। यह तो दूसरी बात है, वह दूसरी बात है।

'**तथा जो व्यवहार में जागता है...**' जागने की व्याख्या यह दूसरी है। व्यवहार के परिणाम में एकाकार होकर उसमें सर्वस्व महिमा मानकर बैठा है, '**वह अपने कार्य में सोता है।**' समझ में आया? ... शुभभाव की क्रिया के परिणाम जितने प्रकार के कहे, उसमें एकाकार हो जाता है, जागता है यानी ज्ञान को उसमें ही झुकाया है, वह अपने कार्य में सोया है। ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा ज्ञायकभाव चैतन्य, उसकी दशा का आश्रय लेकर दशा प्रगट हो, उस कार्य में सो गया है। वह कार्य नहीं करते। व्यवहारकार्य में जागृत है, वह निश्चय के कार्य को करता नहीं। निश्चयकार्य में जागृत है, व्यवहार आये उसका आदर करता नहीं। स्पष्ट है, कितनी बात स्पष्ट है? कुन्दकुन्दाचार्य और अमृतचंद्राचार्य का आधार देकर (बात सिद्ध करते हैं)। दो बड़े स्तंभ, धर्म का स्तंभ। कुन्दकुन्दाचार्य और अमृतचंद्राचार्य। उसने लिखा है, मुमुक्षुओं को कुन्दकुन्दाचार्य और अमृतचंद्राचार्य की बहुत श्रद्धा है, इसलिये उनका आधार देकर हम स्थापेंगे कि

व्यवहार और निमित्त से कार्य होता है। अरे.. भगवान! व्यवहार है ऐसा कहा है अमृतचंद्राचार्य और कुन्दकुन्दाचार्य, दोनों ने और अनंत मुनियों ने कहा है, कोई मुनि में अंतर नहीं है। कोई मुनि के कथन में अंतर नहीं होता, सच्चे मुनि जो हैं, पूज्यपादस्वामी हुए, अकलंकदेव हुए, द्रव्यसंग्रह के (रचयिता) नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती हुए, महान समंतभद्र हुए, सब मुनियों भावलिंगी संत सब का कथन एक ही प्रकार का है, किसी में कोई अंतर है ही नहीं। सत्य का डंका सबने बजाया है। किसी ने कोई अपेक्षा से व्यवहार की प्रधानता से कथन किया हो, निश्चय को गौण रखा हो, लेकिन निश्चय का आश्रय करने का तो किसीने गौण नहीं किया है।

'**इसलिये व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर...**' लो, लो आया। व्यवहारनय का कथन जैनदर्शन में चार अनुयोग में बहुत चले, उसका श्रद्धान छोड़कर '**निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है।**' देखो! शास्त्र में जितना निश्चय से सच्चा अनुपचारी कथन हो वह बात सत्य है, ऐसा उसे मानना चाहिये। जितना व्यवहारनय का पराश्रित कथन हो वह उपचारिक अन्यथा व्यवहारनय का कथन है ऐसा जानकर उसकी श्रद्धा छोड़ने योग्य है। कहो, समझ में आया? धरमचंदजी! क्या व्यवहार-व्यवहार? कितना लाभदायक उसमें आता है?

मुमुक्षु :-- आता तो है।

उत्तर :-- आता है, न आवे तो वीतराग हो जाये। आता है उसकी तो बात है। सम्यग्दृष्टि को निश्चय का आश्रय ज्ञानघन का होने के बावजूद, ज्ञानघन में पूरी स्थिरता जब तक न हो, तब तक बराबर देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पूजा, दान, दया ऐसा शुभ भाव आये बिना रहता नहीं। आये, लेकिन उससे धर्म होता है ऐसा वह मानता नहीं। कहो, समझ में आया? पाप से बचने को अथवा उस काल में वह भाव ही होता है। कहो, समझ में आया?

सब समझने जैसी बात यह सब तो। ऐसी है कि क्या हो? कथन कोई दूसरे प्रकार का और भाव अभिप्राय में संतों का दूसरा था। अंतर का अकेला ज्ञानघन चैतन्यमूर्ति प्रभु, उसका ही आश्रय कराने का लक्ष्य बदलकर कराने का आशय है सब शास्त्रों में, बारह अंग और चौदह पूर्व का। कथनपद्धति दो प्रकार से चले, परन्तु वस्तु एक प्रकार से सच्ची और एक प्रकार से उपचार के कथन हैं।

'**इसलिये व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर...**' जितना, जैन शास्त्र में चार अनुयोग में व्यवहार की आज्ञा के पराश्रित का कथन आवे, जिसमें परद्रव्य का लक्ष्य आवे, वह सब भाव धर्म नहीं है, ऐसा श्रद्धान करने योग्य है। वह भी व्यवहारधर्म है न? ऐसा कहते थे। लेकिन व्यवहारधर्म यानी धर्म नहीं है। निश्चय से धर्म वह सत्य है,

व्यवहारधर्म असत्य है अर्थात् धर्म है नहीं। परन्तु निमित्त देखकर, सहचर देखकर निश्चय की दृष्टि की स्थिरता की भूमिका में उस जात की कषाय की मंदता की योग्यता व्यवहार से मैत्री गिनकर उसको उपचार से मोक्षमार्ग कहने में आया है। लेकिन वह श्रद्धान छोड़ने योग्य है। व्यवहार मोक्षमार्ग नहीं है ऐसा मानने जैसा है। समझ में आया?

अब कहते हैं, '**निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है।**' ऊपर आया था, ऊपर देखो, श्रद्धान तो निश्चय का रखते हैं, प्रवृत्ति व्यवहाररूप रखते हैं, इसप्रकार दो नय हम अंगीकार करते हैं। तब कहते हैं, नहीं, ऐसा नहीं बनता। क्योंकि निश्चय का निश्चयरूप और व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान करना योग्य है। एक ही नय का श्रद्धान करे तो एकान्त मिथ्यात्व होता है। है पाटनीजी ऊपर? यहाँ ना कहते हैं, वहाँ कहा कि एकान्त मिथ्यात्व होता है। व्यवहार से व्यवहार जिस प्रकार से है, उस प्रकार से है ऐसा श्रद्धान करना चाहिये, परन्तु श्रद्धा में आदरणीय करना चाहिये नहीं। व्यवहार को व्यवहार के रूप में भूमिका प्रमाण में आवे, वह आता ही नहीं और होता ही नहीं (ऐसा माने) तो निश्चयनय की एकान्त मिथ्यादृष्टि होती है। और व्यवहार से धर्म होता है ऐसा अंगीकार करे तो निश्चय और व्यवहार दोनों नय नहीं रहते। समझ में आया? कितना, एक सादी हिन्दी भाषा में टोडरमलजी ने गृहस्थाश्रम में रहकर कितना काम सत्य को डंके चोट पर बात प्रसिद्ध की है। दुनिया की कोई दरकार नहीं रखी है। यह कहने से, बाहर प्रसिद्ध करने से समाज की प्रतिक्रिया होगी, मुझे मानेंगे कि नहीं? मेरी निंदा करेंगे? हेलना करेंगे? सत्य का रहस्य खोलने में जगत की प्रतिक्रिया क्या होगी, यह ज्ञानी को देखना नहीं रहता। समझ में आया? लोग क्या बोलेंगे? कैसे होगा? लोग उनके घर रहे, तुझे क्या काम है? सत्य को सत्यरूप से अनंत तीर्थंकरों ने कहा है, गणधरों ने शास्त्र में गुँथा है, आचार्यों ने डंके की चोट पर ग्रंथ, टीका और शास्त्र लिखे। व्यवहार जहाँ-जहाँ हमने कहा हो, कथन करना और मुनि कहते हैं कि हमने जहाँ-जहाँ परद्रव्याश्रित व्यवहार कहा हो, उसकी श्रद्धा छोड़ना। लेकिन आपने कहा है न, प्रभु! हमने कहा है वह बन्ध का कारण है, लेकिन बीच में आता है उसका ज्ञान कराने को कहा है। और उसकी श्रद्धा न कर कि आये ही नहीं, निश्चय एकान्त मिथ्यात्व होता है और आता है इसलिये धर्म के लिये आदरणीय है, मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? क्यों नरेशचंद्रजी! समझ में आता है? गुजराती नहीं चलता है।

अब कहते हैं, क्यों? वह तो बात की। व्यवहार की श्रद्धा छोड़ने योग्य है उसका कारण क्या? कारण देना पड़े न? व्यवहारनय से भगवान कहे, शास्त्र कहे और आप कहते हो कि वह श्रद्धा छोड़ने योग्य है, वह आदरणीय नहीं है, कोई कारण है?

हाँ, '**व्यवहारनय स्वद्रव्य-परद्रव्य को... किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है,...**' आखिर का शब्द लेना। है? व्यवहारनय का ऐसा कथन है कि स्वद्रव्य को परद्रव्य कहे और परद्रव्य को स्वद्रव्य कहे। ऐसा व्यवहारनय परद्रव्याश्रित कथन एकदूसरे के आश्रय में मिलाकर, '**किसी को किसी में मिलाकर निरूपण...**' मिलाकर वहाँ से लेना। स्वद्रव्य-परद्रव्य, उनके भाव और कारण-कार्य, तीन बोल हैं। तीनों में सब में किसी का किासी में मिलाकर, ऐसा लेना।

व्यवहारनय, एक द्रव्य का कथन चलता हो, वहाँ दूसरे द्रव्य में डाल दे। जैसे कि आत्मा को विकार हो तो व्यवहारनय कहे कि कर्म के कारण हुआ। समझ में आया? वह कर्म का द्रव्य है, कर्म का कार्य है। ऐसा व्यवहारनय कहे। ऐसी श्रद्धा छोड़ने योग्य है। एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य में.. समझ में आया? आत्मा जड़ की क्रिया कर सके या जड़ को हिला सके, ऐसा मानना चाहिये,.. ऐसा कथन आता है, जयधवल, देखो! निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है ऐसा श्रद्धान करना। ऐसी टीका है, हाँ! रोग आवे तो दवाई से रोग मिट जाता है, फलाना होता है, इच्छा होती है और शरीर हिलता है, ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है ऐसी श्रद्धा बराबर करनी। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, पृथक्-पृथक् होता है ऐसी श्रद्धा करनी। लेकिन वह श्रद्धा करके वह सम्बन्ध छोड़ने के लिये व्यवहार की श्रद्धा छोड़ने योग्य है। ओहोहो...! समझ में आया?

व्यवहारनय यानी पराश्रय कथन करनेवाला। कर्म का नाश हो तो जीव को मुक्ति हो, वज्रवृषभनाराच संहनन हो तो जीवद्रव्य में केवलज्ञान प्राप्त करने समय आये। वह, परद्रव्य के कारण स्वद्रव्य में कुछ हो ऐसा कहे वह व्यवहारनय है। वह किसी का किसी में मिलाकर निरूपण करता है। '**सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व है;...**' है? मणिभाई! ऐसे श्रद्धान से मिथ्यात्व है। वज्रनाराच संहनन से जीव को लाभ होता है, मनुष्यदेह से जीव को लाभ, परद्रव्य से जीव को लाभ होता है ऐसा कथन शास्त्र में आवे वह, व्यवहारनय एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य में मिलाकर बात करता है। ऐसा माने तो मिथ्यात्व है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म है, शांतिभाई! जगत को साथ मिलाना चाहे तो कहीं मेल खाये ऐसा नहीं है।

व्यवहारनय यानी क्या? बात कही कि पराश्रित व्यवहार। कहा न, पराश्रित व्यवहार, ऊपर कहा था। उतना अध्यवसाय छुड़ाया तो मैं तो ऐसा ही मानता हूँ कि यह भगवान ज्ञायकभाव ज्ञानघन उसका आश्रय छोड़कर पराश्रित जितना भाव हो, वह सब छोड़नेयोग्य है। क्योंकि एक द्रव्य के अलावा परद्रव्य का आश्रय (करे), त्रिलाकनाथ तीर्थंकर का आश्रय होकर भाव हो, वह भी छोड़ने योग्य है। पोपटभाई! ये समेदशीखर की यात्रा करने का पराश्रित भाव हो, वह भाव शुभ है। श्रद्धा में धर्म है, ऐसा छोड़ने योग्य

है। समेदशीखर की यात्रा से जन्म-मरण मिट जाये। केशवलालभाई! आता है कि नहीं उसमें? 'एक वार वंदे जो कोई, नर्क-पशु न होई'। वह तो एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य के आश्रय का कथन व्यवहारनय का है। एक द्रव्य दूसरा द्रव्य को (कुछ करता नहीं)। समेदशिखर तो परद्रव्य है। परद्रव्य के आश्रय से आत्मा का संसार टूटे तीन काल तीन लोक में? तीन काल तीन लोक में नहीं। समझ में आया? परन्तु धर्मी को भगवान का साक्षात् दर्शन नहीं है ऐसे काल में उसे प्रतिमा का और समेदशिखर आदि का दर्शन का भाव समकिती--धर्मी को आये बिना रहे नहीं। उसे समझता है कि यह कषाय की मंदता पुण्यबन्ध का कारण है। व्यवहार से, जिसे निश्चय की दृष्टि हो उसे व्यवहार से उसे धर्म भी कहने में आता है। परन्तु वह श्रद्धा में आदरणीय नहीं है। समझ में आया?

एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में। ऐसा कहे, शरीर अच्छा हो, विचार अच्छे आये, फलाना हो अथवा शास्त्र में कथन आये, देखो! मुनि का आता है न? मुनि आत्मधर्म का साधन करते हो, आत्मज्ञान साधन, चारित्र आनंद, उसके शरीर के पोषणार्थ श्रावक आहार दे। आहार दिया उसने मोक्ष दिया, ऐसा पद्मनंदी पंचविंशति में पद्मनंदी निर्ग्रंथ भावलिंगी संत कहे। कहो, ज्ञानचंदजी! वह लिखान है पद्मनंदीं पंचविंशति में। क्या? जो कोई भावलिंगी संत आत्मज्ञानी धर्मात्मा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र सहित है, बाह्य में नग्न दशा सहज हो गयी है, उसको कोई आहार दे तो कहते हैं, पद्मनंदी आचार्य भावलिंगी संत १००० वर्ष पहले, ९०० वर्ष पहले जंगल में थे, पद्मनंदी पंचविंशति बनाया। अपने यहाँ पर्युषण में कुछ अधिकार पढ़ने में आता है। कहते हैं कि उसने मोक्ष दिया। क्यों? मुनि मोक्षमार्ग साधते हैं, उनको शरीर साधन है। शरीर को आहार साधन है, आहार को देनेवाले श्रावक साधन है, इसलिये श्रावक ने उन्हें मोक्ष दिया। आता है, हाँ पद्मनंदी पंचविंशति में। आता है? व्यवहारनय स्वद्रव्य, परद्रव्य को किसी का किसी में मिलाकर निरूपण करता है। समझ में आया?

उसमें भी बहुत लिखा है, पद्मनंदी पंचविंशति में, यह सब गाथाएँ वहाँ है। '**ववहारो अभूदत्थो**', '**सुदपरिचिदाणुभूदा**' सब गाथाएँ हैं। '**जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं**' वह सब गाथाएँ पद्मनंदी में हैं। मुनियों तो.. जो कोई दिगंबर संत भावलिंगी मुनि हुए उनकी एक ही प्रकार की धारा थी। फिर साधारण मुनि हो तो विशेष... सब की मूल बात में कहीं अंतर नहीं है। किसी को कोई विकल्प की स्थिति उत्पन्न हुई कथन होने की, किसी को कोई। समझ में आया? व्यवहारनय स्वद्रव्य और परद्रव्य को मिलाकर, किसी का किसी में (निरूपण करता है)। आहार दिया वहाँ मोक्ष हुआ। नवनीतभाई! पद्मनंदी का ... अन्दर, व्यवहार सो अभूतार्थ है। जितने व्यवहार के कथन

इसमें मैंने भी कहे, वह सब अभूतार्थ है और श्रद्धामें से छोड़ने योग्य है। यह कैसे समझना?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- व्यवहार पूज्य है। व्यवहार से व्यवहार पूज्य नहीं है? भगवान की भक्ति, देव-गुरु... व्यवहार से व्यवहार पूज्य है, निश्चय से पूज्य नहीं है। उपचार से पूज्य है। समझ में आया? निश्चय से स्वद्रव्य ज्ञायकभाव पूज्य है। समझ में आया इसमें? आहाहा..! उसका ज्ञान भी यथार्थ करे नहीं, श्रद्धा में बराबर बात को रुचिगत करके मिलाये नहीं, और बाह्य अकेली प्रवृत्ति और क्रियाकांड करे वहाँ कहे, ओहो..! धर्म हुआ, इसने धर्म किया। वह सब तो परेशान होने का चौरासी के अवतार में डूबने के लक्षण हैं। व्यवहारनय.. समझ में आया?

एक गाथा कार्तिकेयानुप्रेक्षा में आती है, पुद्गल की शक्ति तो देखो, ऐसा आता है भाई! कार्तिकेयानुप्रेक्षा में आता है न? पंडितजी के साथ बात हो गयी थी, बंसधीरजी के साथ। पुद्गल की शक्ति तो देखो, भगवान आत्मा का केवलज्ञान तीन काल तीन लोक को जाने, उसे केवलज्ञानावरणीय पुद्गल की शक्ति ने रोक दिया। वह एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य को मिलाकर बात कही है। समझ में आया? घात-बात कौन (करे)? तीन काल तीन लोक में कर्म आत्मा की पर्याय का घात करे, ऐसा तीन काल में बनता नहीं। देखो, भगवान ने घातिकर्म कहे हैं, घातिकर्म कहे हैं। घाति तो घात करे इसलिये कहा है कि नहीं? वह असत्य व्यवहार से कहा। घातिकर्म आत्मा का घात (करे), परद्रव्य स्वद्रव्य का घात करे ऐसा तीन काल में बनता नहीं। कितनी लिखावट आती है ऐसी। वह कहते हैं, लो आधार देते हैं। ऐसे तो हम भी अनंत दे सकते हैं। माल क्या है? वह सब तो व्यवहार के कथन उपचार का निमित्तपना कौन था, उसको बताने के लिये वह सब कथन है।

संघयण ऐसा हो तो ऐसा हो, लाओ एक (भी जीव) वज्रनाराच संहनन बिना केवलज्ञान प्राप्त किया हो। लाओ एक। वज्रनाराच समझ में आता है? आओ, आओ, मूलचंदजी! कितने आये हैं? आठ, अच्छा। समझ में आया? पंडितजी! समझ में आता है कि नहीं? क्या देखो? यह तो शास्त्र पुकारता है। व्यवहारनय का ऐसा कथन शास्त्र में है कि एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य में मिलाकर बात करे। समझ में आया? केवलज्ञान की आत्मा की शक्ति वह, केवलज्ञानावरणीय जड़ कर्म, (उसका) घात कर दे। ऐसा स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में बारह भावना के अधिकार में अधिकार है। वह एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य में (मिलाकर) कथन की बात है। ऐसा ही मान ले तो वह मिथ्यादृष्टि है।

ज्ञानावरणीय ने ज्ञान का घात किया। ज्ञानावरणीय पर जड़ चीज है। वह आत्मा

की गुण की पर्याय का घात करे ऐसा मानना वह मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। आहाहा..! ये शास्त्र में लिखा है। ज्ञानावरणीय, ज्ञानावरणीय उसको कहा। क्या कहा? ज्ञान को आवरण करनेवाला है। ज्ञानावरणीय परद्रव्य ज्ञान को आवरण करनेवाला है, ऐसा लिखा है। लिखा है वह निमित्त का कथन है। उसे ऐसा मान ले, व्यवहारनय से स्वद्रव्य परद्रव्य को मिलाकर कथन किया है, वह व्यवहारनय अनुसार मान ले कि उसने घात किया तो (वह) मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? व्यवहारनय स्वद्रव्य परद्रव्य को... पीछे का लेना, हाँ! '**किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है;...**' अर्थात् किसी को किसी में मिलाकर मान्यता करता है। वह मान्यता सच्ची नहीं है। समझ में आया? ऐसे तो बहुत दृष्टान्त है। जितने अभी तकरार में उतरते हैं.. आत्मा में, वह भाव में ले लेना।

और '**उनके भावों को...**' उनके भावों को। किसके? एक द्रव्य के भाव को दूसरे द्रव्य का भाव और दूसरे द्रव्य के भाव को स्वद्रव्य का भाव व्यवहारनय कहे। राग को मोक्षमार्ग कहे। व्यवहारनय राग को मोक्षमार्ग कहे। मोक्षमार्ग तो वीतरागी आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान निर्विकल्प, उसको मोक्षमार्ग कहने में आता है। व्यवहारनय एक भाव को दूसरे भाव में मिलाकर कहता है। उस व्यवहारनय को वह-वह निश्चय मिला ऐसा व्यवहारनय कथन करती है। पंचास्तिकाय में ऐसा लेख आवे कि व्यवहारनय से धीरे-धीरे शुद्धता बढ़ती जाये। अमृतचंद्राचार्य का कथन टीका में। धोबी कपड़े को शीला पर पटकता हुआ, क्या कहा? शीला पर... कपड़े को पानी में भीगोकर पटकता हुआ और अन्दर साबून लगाकर मैल निकालता है। ऐसे व्यवहाररत्नत्रय द्वारा धर्मी जीव धीरे-धीरे शुद्धि बढ़ाता हुआ, ऐसा लेख है अमृतचंद्राचार्य की टीका में। आचार्य कहते हैं कि वह सब हमारे व्यवहारनय के कथन हैं। व्यवहार से निश्चय और धीरे-धीरे शुद्धता होती है ऐसा मान तो मिथ्यादृष्टि है। क्या हो? समझ में आया?

आचार्य स्वयं कहते हैं, हमने वहाँ लिखा है वह व्यवहार से है। परद्रव्य के आश्रय के जितने... मोक्षमार्ग स्वद्रव्याश्रित है और राग है वह परद्रव्याश्रित है। परद्रव्याश्रित राग से स्वद्रव्य को लाभ हो, स्वद्रव्य के भाव को निर्मल को लाभ हो, वह बात तीन काल तीन लोक में सच्ची नहीं है। समझ में आया? कहो, मूललचंदजी! ऐसा व्यवहार-निश्चय का चलता है। डॉक्टर आये हैं? डॉक्टर आओ आओ यहाँ, वहाँ क्यों बैठे हो? समझ में आया?

व्यवहारनय एक स्व चैतन्य विज्ञानघन के अवलम्बन के सिवा, व्यवहारनय पर के अवलम्बन के भाव से, पर के अवलम्बन के भाव से लाभ होता है (ऐसा कहती है)। आत्मा की निर्मल पर्याय में व्यवहार, राग और पुण्य से लाभ होता है, ऐसा

व्यवहारनय निरूपण करता है। ऐसा माने उसको मिथ्यात्व लगता है। पुस्तक है कि नहीं? देखो, उसमें लिखा है। सोनगढ़ का कहाँ है? ये तो टोडरमल का है। कहो, यह तो टोडरमल का हिन्दी है उसका गुजराती अक्षरशः है। और टोडरमल ने घर का कहाँ कहा है? शास्त्र का आधार देकर (बात करते हैं)। ववहारो अभूदत्थो, जो ११वीं गाथा है, उसके आधार से यह सब बात करते हैं।

शास्त्र में भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कहा हुआ कुन्दकुन्दाचार्य ने संग्रह कर के कथा हुआ, व्यवहार अभूतार्थ है। ११वीं गाथा समयसार की जैनशासन का स्तंभ। जैनशासन की मौलिक चीज। व्यवहार असत्यार्थ (है)। उस व्यवहार से, व्यवहार की पर्याय से, राग से, पुण्य से जीव को मोक्षमार्ग हो ऐसा व्यवहारनय कहे। क्यों कि किसी द्रव्य का किसी द्रव्य में मिलाकर और उसके भाव को, कोई द्रव्य की पर्याय को, कोई द्रव्य की पर्याय व्यवहार ... कहे, ऐसी मान्यता, ऐसे श्रद्धान से मिथ्यात्व है। ऐसे श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है। मूलचंदजी! निःशंक, निःशंक। कहाँ गये डॉक्टर? क्या कहा?

अंजन चोर निःशंक हुआ, निःशंक हुआ तो सम्यग्दर्शन हुआ। वह व्यवहारनय का कथन एक में दूसरे को मिलाकर किया है। वह तो बहुत लंबा व्यवहार है। समझ में आया? देखो! रत्नकरंड श्रावकाचार, उसमें जो आठों निःशंक, निःकांश के दृष्टान्त दिये हैं, वह सब भविष्य में निश्चय प्राप्त किया है, उसका व्यवहार में आरोप और व्यवहार का आरोप एक अंश में किया है। वह माने कि इसके कारण निश्चय प्राप्त किया, ऐसा व्यवहार का कथन एक पर्याय में दूसरी पर्याय का कथन करे, ऐसा माने तो मिथ्यात्व है। रत्नकरंड श्रावकाचार में आठ बोल आते हैं। आते हैं कि नहीं? व्यवहारनय का कथन अलग जाति का होता है, इसलिये उससे लाभ होता है, ऐसा तीन काल तीन लोक में नहीं है।

इसलिये यहाँ टोडरमलजी कहते हैं, व्यवहारनय स्वद्रव्य परद्रव्य को किसी का किसी में मिलाकर, उनके भावों को किसी का किसी में मिलाकर निरूपण करता है। इसलिये ऐसे श्रद्धान से मिथ्यात्व है। ऐसी श्रद्धा रखे तो मिथ्यात्व टलता नहीं। लो, कहा है न? आता है न? कोई .. प्रभावना की, ... आती है न आठ कथा? हरिषेण चक्रवर्ती की माता। वह सब व्यवहार के कथन हैं। वह शुभ राग आया वह होता है, लेकिन उस शुभ राग के कारण सम्यग्दर्शन हो, या शुभ राग के कारण मोक्षमार्ग हो, ऐसा जो व्यवहारनय का कथन है ऐसा माने तो मिथ्यात्व लगता है। यह मोक्षमार्गप्रकाशक चलता है, टोडरमलजी की बात चलती है। टोडरमलजी की भगवानमल की बात चलती है। समझ में आया? दो बात हुई।

अब एक आया, कारण और कार्य की बड़ी तकरार। तीसरा बोल कारण-कार्य। कारण-कार्य तीसरा बोल है। निमित्त कारण से यहाँ कार्य हो, ऐसा व्यवहारनय के कथन आये, ऐसा ही माने तो मिथ्यात्व है। है उसमें, देखो। तीन बोल में तो पूरी व्यवहारनय की जितनी कथनपद्धति है, सब को समाविष्ट कर दिया है। व्यवहारनय '**कारणकार्यादिक को....**' आदि में आ गया न? स्वद्रव्य-परद्रव्य, उनके भाव आदि। कारण व्यवहार और निश्चय कार्य, निमित्त कारण और शुद्ध उपादान में लाभ हो, ऐसा व्यवहारनय का कथन कारण कोई और कार्य कहीं और जगह, मिलाकर बात करती है। ऐसा माने तो उसे मिथ्यात्व लगता है। है न भाई? ये कारण-कार्य की तकरार।

यहाँ टोडरमलजी कहते हैं, '**कारणकार्यादिक को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है;...**' भगवान की प्रतिमा के दर्शन से शुभ परिणाम होते हैं। वह कारण और यहाँ कार्य, व्यवहारनय कथन करती है। ऐसा माने, उससे हुआ माने तो मिथ्यात्व लगता है। समझ में आया? अथवा सम्यग्दर्शन के जो कारण वेदना कही, देवऋद्धि कही, श्रवण कहा, वह था तो यहाँ सम्यग्दर्शन उसके कारण, उस कारण के कारण यहाँ कार्य हुआ, ऐसा व्यवहारनय का कथन शास्त्रों में आवे, उसे जानना चाहिये। लेकिन माने कि वह कहा सो बराबर है, तो कारण-कार्य का बड़ा विपरीतता उत्पन्न होकर उसे मिथ्यात्व लगता है। उसको धर्म होता नहीं। विशेष कहेंगे....

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर सं.-२४८८, चैत्र सुद-९, शुक्रवार, दि. १३-४-१९६२,
सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. १६

यह मोक्षमार्गप्रकाशक, उसका सातवाँ अध्याय है। उसमें अधिकार मुद्दे की, मूल रकम की बात कही है। मूल रकम कहते हैं न? मूल रकम। जैन में यानी दिगंबर संप्रदाय में जन्म हुआ होनेपर भी, अन्य संप्रदाय में जन्म हुआ हो उसको तो सत्य बात की परंपरा उसके शास्त्र में, गुरु में होती नहीं। लेकिन जो जैन संप्रदाय दिगंबर के नाम से जाना जाता है, उसमें जन्म होनेपर भी निश्चय क्या, व्यवहार क्या, उसके